

**उत्तर एवं मध्यभारत के लोकनृत्य एवं लोकनाट्य पर आधारित राष्ट्रीय संगोष्ठी**  
**का संक्षिप्त विवरण**  
**(17 - 19 अक्टूबर, २०१२)**

इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय कला केन्द्र, पूर्वक्षेत्रीय केन्द्र, वाराणसी एवं अन्तर्-सांस्कृतिक अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित उत्तर एवं मध्यभारत के लोकनृत्य एवं लोकनाट्य पर एक त्रिदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी एवं परिसंवाद विगत १७ से १९ अक्टूबर, २०१२ तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कला संकाय स्थित एनी बेसेन्ट सभागार में सम्पन्न हुआ।

उद्घाटन सत्र में कार्यक्रम का शुभारंभ करने के लिये इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली के सदस्य सचिव श्रीमती दिपाली खन्ना मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थीं तथा हिन्दी साहित्य जगत् के प्रख्यात कवि प्रो० अरुण कमल विशिष्ट अतिथि के रूप में "बीज वक्तव्य" दिया।

१७ अक्टूबर, २०१२ को प्रातः ११.३० बजे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कला संकाय स्थित एनी बेसेन्ट सभागार में कार्यक्रम का शुभारंभ संगीत एवं मंचकला संकाय के छात्राओं द्वारा प्रस्तुत कुलगीत से हुआ। माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलन के बाद अन्तर्-सांस्कृतिक अध्ययन केन्द्र के संयोजक प्रो० कमलशील ने संगोष्ठी के प्रतिभागिगण एवं सभागार में उपस्थित अतिथियों का स्वागत किया। डा० अर्चना कुमार ने संगोष्ठी के विषय प्रवर्तन किया।

तत्पश्चात् प्रो० अरुण कमल ने बीज वक्तव्य में कहा कि लोककला अनाम प्रणेताओं द्वारा रचित होती है। अतः बिदेसिया जैसे लोकमंच की लोकरूपता के प्रश्न पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि लोककलाएं सर्वनिष्ठ होती हैं और इसलिये वे विश्वजनीन होती हैं। इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय कला केन्द्र की सदस्य सचिव श्रीमती दिपाली खन्ना मुख्य अतिथि पद से बोलते हुए कहा कि भारत की लोककला एवं शास्त्रीय कलाओं की परंपराएं एक दूसरे को निरन्तर बल देती रही हैं और परस्पर परिपूरक हैं। उनमें विभेद या संघर्ष की प्रवृत्ति पर अतिरंजित महत्त्व देना वांछनीय नहीं है। अपितु एक को समझने के लिए दूसरे का संवर्धन, परिरक्षण और दस्तावेजीकरण का कार्यक्रम आवश्यक है। इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय कला केन्द्र इस प्रकार की योजनाओं को निरन्तर प्रोत्साहित कर रहा है। इन कलारूपों पर विद्वानों की गोष्ठी के साथ प्रयोग का भी कार्यक्रम रखा जाता है ताकि आने वाली पीढ़ी के लिये यह उपलब्ध हो सके, कारण लोककला परंपरा को नई पीढ़ी तक ले जाना अत्यन्त आवश्यक है।

अध्यक्षीय वक्तव्य देते हुए इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय कला कन्द्र, पूर्वक्षेत्रीय केन्द्र, वाराणसी के परामर्शदाता प्रो० कमलेशदत्त त्रिपाठी ने कहा कि भारतीय संस्कृति का शास्त्रीय एवं लोक-ऐसा करके सुतीक्ष्ण विभाजन (Water-tight compartment division) करना कठिन है क्योंकि पाश्चात्य जगत् के Folk और हमारे संस्कृति के 'लोक' में बहुत अन्तर है। लोक एवं शास्त्र के अन्तःसम्बन्ध पर प्रो० त्रिपाठी ने सभा की दृष्टि आकर्षित किया। बाद में उन्होंने वेद से लेकर पंचतन्त्र, हितोपदेश तक भारतीय आख्यान परंपरा के व्यापक स्वरूप का उल्लेख किया और बतलाया कि कैसे यह लोककथा शतपथब्राह्मण की मनुमत्स्य कथा से शुरू करके जातक, बृहत्कथा पञ्चतन्त्र तक निरन्तर अविच्छिन्न धारा में चली आयी है। उनके अनुसार इस परंपरा को अनादि मानना ही सही होगा। यह लोककथा हमारी संस्कृति की आधारशिला है, इसको अपनी निजता के साथ जोड़ना चाहिए।

डा० संजय कुमार के धन्यवाद ज्ञापन के साथ उद्घाटन सत्र का समापन हुआ।

संगोष्ठी का प्रथम शैक्षणिक सत्र बिदेसिया पर केन्द्रित था। प्रो० चौथीराम यादव की अध्यक्षता में इस सत्र में डा० तैय्यब हुसैन, पटना, डा० ऋषिकेश सुलभ, पटना एवं डा० रामनारायण तिवारी 'बिदेसिया' के विभिन्न पक्ष पर अपने अपने शोधपरक व्याख्यान दिये। पहला प्रपत्र "बिदेसिया के इति-अर्थ" डा० तैय्यब हुसैन ने प्रस्तुत किया। अपने विस्तृत व्याख्यान में डा० हुसैन बिदेसिया शब्द के स्वरूप को बतलाते हुए कहा कि बिदेस का अर्थ है गाँव के बाहर शहर विशेषतः कलकत्ता शहर, जहाँ प्रायः गाँव के लोगों को जीविका के कारण रहना पड़ता था। इस नामकरण के यथार्थ कहते हुए डा० हुसैन ने बताया कि बीसवीं सदी की शुरुआत में लोककलाकार भिखारी ठाकुर ने रामलीला, रासलीला, नौटंकी आदि लोककलाओं के तत्त्वों को लेकर एक नयी नाट्यविधा का प्रयोग किया जो आगे चलकर उनके प्रथम नाटक "बिदेसिया" के नाम पर बिदेसिया नाट्यशैली के नाम से प्रसिद्ध हुआ। डा० हुसैन के अनुसार भिखारी ठाकुर के समय के पहले से ही बिदेसिया नाम से एक नाटक चलता था जो सोलह भागों में बँटा था। भिखारी ठाकुर उसे अपने ढंग से बना लिये। डा० हुसैन आगे चलकर इस नाट्यविधा की सारी विशेषताएं, गायनशैली, यहाँ प्रयुक्त गीत, वाद्य एवं कलाकारों के बारे में विशद चर्चा किये। उन्होंने भिखारी ठाकुर के शेष नाटकों के बारे में भी सामान्य जानकारी दिया एवं कौन सा नाटक कहाँ से, कब प्रकाशित हुआ- यह भी श्रोताओं को बतलाया।

द्वितीय वक्ता डा० ऋषिकेश सुलभ ने बिदेसिया पर अपने प्रपत्र पेश करते हुए कहा कि अंग्रेजी folk और यहाँ के लोक दोनों अवधारणा एक नहीं। इसीलिये पाश्चात्य के folk चाहे विलुप्त हो जाय, उन्हें संरक्षण की जरूरत पड़े पर यहाँ के लोक की अवधारणा हमारी जीवनशैली के साथ ओतप्रोत रूप से जुड़ी है। किन्तु निरन्तर जीवनधारा में प्रवाहित रहते हुए परंपरा में कुछ चीजें

अनावश्यक, अप्रासंगिक हो जाती हैं, इसीलिये उसका विलुप्त हो जाना स्वाभाविक है। पर इससे परंपरा की सामूहिक विलुप्ति की शंका नहीं होनी चाहिए।

बिदेसिया परंपरा में सामाजिक अपकर्ष क्या थी? कैसे उसका दुरुपयोग होता था, इसको लेकर भिखारी ठाकुर ने कैसे अपने नाटक बनाये- इसी विषय पर डा० सुलभ का व्याख्यान केन्द्रित था। हमलोगों को भी परंपरा में जो हेय वस्तु हैं उसे छोड़कर उत्कृष्ट तत्त्वों को लेकर आगे बढ़ना होगा। इसी धारणा पर बल देते हुए भिखारी ठाकुर ने अपनी नाट्यशैली बनाये। कैसे उनके नाटक में अंकिया नाट, रासलीला, कीर्तनिया आदि का समन्वय हुआ, इस पक्ष पर डा० सुलभ ने विस्तार से चर्चा की।

तृतीय वक्ता गाजीपुर से आये डा० रामनारायण तिवारी बिदेसिया नाटक के विशेष तथ्य (जो तिवारी जी ने स्वयं प्रत्यक्ष किया था) उसी को केन्द्र में रखकर अपना व्याख्यान दिया। नाटक में प्रयुक्त गीत, वाद्य, नाटक के कलाकारगण एवं उनलोगों की साज-सज्जा पर भी प्रकाश डाला। सर्वोपरि भिखारी ठाकुर की अभिनय शैली कैसी थी, इसको डा० तिवारी ने सोदाहरण पेश किये। अन्ततः वर्तमान समय में भिखारी ठाकुर एवं उनके नाटकों की प्रासंगिकता पर डा० तिवारी ने अपने विचार व्यक्त किये। प्रो० चौथीराम यादव ने संगोष्ठी सत्र में प्रस्तुत सार प्रपत्रों पर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत की। सभा का संचालन डा० राजकुमार ने किया।

सायंकालीन प्रयोग सत्र में चन्द्रभान यादव एवं उनके साथियों ने आल्हा गायन प्रस्तुत किया एवं बाद में श्री संजय उपाध्याय एवं उनके साथियों ने भिखारी ठाकुर के प्रख्यात नाटक 'बिदेसिया' का मंचन किया।

दिनांक १८ अक्टूबर, २०१२ को प्रातः १०.३० बजे एनी बेसेन्ट हाल में शैक्षणिक सत्र का दूसरा चरण डा० बलराज पाण्डेय की अध्यक्षता में आरंभ हुआ जिसके मुख्य वक्ता डा० जगदीश पीयूष, डा० रामभजन सिंह, डा० ब्रजेश यादव, डा० प्रभाकर सिंह, डा० मधु शुक्ला एवं प्रो० नागेन्द्र नाथ पाण्डेय थे। यह सत्र बिदेसिया और आल्हा पर आधारित था।

पहले वक्ता डा० जगदीश पीयूष "आल्हा" पर अपना व्याख्यान प्रस्तुत किया और 'आल्हा' का स्वरूप बताते हुए कहा कि आल्हा बुंदेलखण्ड के महोबा के चंदेल राजा परमार देव की सेना में सेनापति रहे दो भाइयों आल्हा और ऊदल के शौर्य और पराक्रम की गाथा है जो राजस्थान से लेकर बिहार तक फैले विशाल भूभाग में सदियों से लोकप्रिय है।

अगले वक्ता डा० पीयूष जी ने आल्हा की कथा संक्षेप में बताकर आल्हा की गायनशैली से प्रभावित होकर कैसे पाश्चात्य विद्वत् समाज प्रभावित हुआ विशेषतः वाटरफील्ड, इलियट, स्मिथ, ग्रियर्सन आदि विद्वानों ने इस महान् लोकगाथा को सुनकर कैसे इसका संकलन, सम्पादन एवं अंग्रेजी

में लिप्यन्तरण करके यूरोप में प्रकाशित किया, इसकी विस्तार से चर्चा की। तत्पश्चात् उन्होंने आल्हा लोकगाथा में संकलित बावन लड़ाईयों का एक परिगणन किया एवं आल्हा गीत के छन्द एवं इन गीतों के साथ प्रयुक्त वाद्ययन्त्रों के बारे में भी जानकारी दिया।

दूसरे वक्ता डा० रामभजन सिंह ने बुंदेलखण्ड में प्रचलित आल्हा पर अपना व्याख्यान देते हुए पहले इसकी कथा का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् विद्वान वक्ता ने श्रोताओं को बताया कि कब, कहाँ और कैसे इसकी पोथियाँ पाई गयी, श्रावस्ती भूखण्ड में *विनयपिटक* की खोज करते समय आल्हा की एक पोथी मिली जिसकी भाषा थी शौरसेनी। सामान्यतया हर एक भूखण्ड में आल्हा की भाषा अलग अलग ही होती है।

तीसरे वक्ता डा० प्रभाकर सिंह अपने शोधपरक व्याख्यान में आल्हा पर आज तक हुए शोधपत्रों का एक सर्वेक्षण किया। आल्हा गीतों के पाठ में समय के साथ कैसे विकृतियाँ (variants) आती गयीं इसके बारे में भी चर्चा की। ये विकृतियाँ मूलतः गायकों की अपनी रचना होती है एवं यह उनलोगों की भौगोलिक पृष्ठभूमि से सम्बद्ध है। इसे डा० सिंह ने सोदाहरण प्रस्तुत किया। इसके बाद विद्वान् वक्ता ने आल्हा गायन के उचित मौसम, कैसे यह गीत जन समुदाय के जीवन को प्रभावित करता है, इन सभी पक्षों पर प्रकाश डाला एवं आल्हा गायन के चार मूल केन्द्र (अवध, भोजपुर, बुंदेलखण्ड एवं कन्नौज) के अनुसार आल्हा के चार संस्करणों के बारे में कहा कि उपर्युक्त कारणों से भूखण्ड के अनुसार आल्हा की कथा में भेद दिखते हैं। डा० सिंह के अनुसार यह सही है कि आल्हा गीत विद्वज्जनों के हाथ से परिष्कृत न होकर आमजनों के हाथों से परिमार्जित एवं परिवर्धित हुआ।

बाद में वक्ता डा० ब्रजेश यादव ने अवधी आल्हा के ऊपर अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। अपने व्याख्यान में डा० यादव ने अवधी शैली की आल्हा की विषयवस्तु, इसकी भौगोलिक पृष्ठभूमि आदि की सामान्य चर्चा करते हुए इस गाथा की गायन में कैसे प्रासंगिक दूसरी चीजें प्रविष्ट हुई, इसकी विशद चर्चा की। कौन-कौन गवेषक कहाँ कहाँ इसके ऊपर शोध किये, इस पर भी प्रकाश डाला। वर्तमान काल में अवधी आल्हा के स्वरूप क्या है इसे डा० यादव ने सोदाहरण प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् विद्वान् वक्ता आल्हा की गायनशैली, गायक कैसे उसे गाते समय परिमार्जन करते हैं, इसमें कौन-कौन से वाद्ययन्त्र प्रयुक्त होते हैं – इसकी भी जानकारी श्रोताओं को दी।

अन्य वक्ता डा० मधु शुक्ला आल्हा लोकगाथा का साहित्यिक विश्लेषण, विशेषतः सांगीतिक पक्ष पर चर्चा की। शोधकर्त्री पहले आल्हा गीत के विषयवस्तु एवं गायकों के बारे में सामान्य परिचय देते हुए आल्हा की साहित्यिक दृष्टिकोण से समीक्षा की और बतलाया कि इन गीतों में प्रयुक्त ध्वन्यात्मक शब्द, ठेठ देशी शब्द, लोकोक्तियाँ एवं प्रतोकात्मक शब्द कैसे गीतों के विषयवस्तु आँखों के सामने खड़ा कर देते हैं। बाद में श्रीमती शुक्ला ने आल्हा गीतों में प्रयुक्त

उपमा, रूपक, अनुप्रास आदि अलंकारों के बारे में विवरण दिया। तत्पश्चात् उन्होंने आल्हा के सांगीतिक पक्ष पर विचार किया। आल्हा के वाचिक एवं आंगिक दोनों प्रकार के अभिनय होते हैं। इन गीतों में तीनों स्वर, ताल सप्तक, विविध छन्द एवं निबद्ध-अनिबद्ध संगीत के बारे में बताई। आल्हा गीतों में मूलतः शृंगार एवं वीर दोनों रस प्रयुक्त होते हैं। अन्ततः श्रीमती शुक्ला न आल्हा गीतों के साथ आधुनिक वाद्ययन्त्रों का प्रयोग कहाँ तक सही है- यह सवाल उठाया।

तत्पश्चात् डा० रामनारायण तिवारी भोजपुरी क्षेत्र में आल्हा गीतों के विविध आयामों पर चर्चा की। भोजपुरी आल्हा के विषयवस्तु, उसकी भाषा, गायन शैली, गायकवृन्दों, उनलोगों की सामाजिक स्थिति आदि पर विद्वान् वक्ता ने विस्तार से विचार किया। इस सत्र के अन्तिम वक्ता प्रो० नागेन्द्र पाण्डेय ने मशहूर लोक कलाकार भिखारी ठाकुर के बिदेसिया नाटक एवं उनकी नाट्यचेतना, नाट्य प्रस्तुति एवं रङ्गमञ्च पर भाषण दिया। प्रो० पाण्डेय अपने व्याख्यान में श्रोताओं को बताया कि सन् १९१९ से लेकर १९३५ तक बिदेसिया नाटक में विकास होता रहा। इसके बाद इन नाटकों के विकास का गतिरुद्ध हो गया। प्रो० पाण्डेय बिदेसिया नाट्यशैली कैसे और कहाँ तक भरत के नाट्यशास्त्र से प्रभावित हुआ, इस पर विशेष रूप से चर्चा की। बाद में उन्होंने इन नाटकों के विषयवस्तु का विश्लेषणात्मक समीक्षा किया एवं भिखारी ठाकुर के नाट्य प्रयोग एवं वाद्य प्रयोग शैली पर भी प्रकाश डाला।

प्रो० बलराज पाण्डेय अपने अध्यक्षीय भाषण में सभागृह में प्रस्तुत किये गये सभी प्रपत्रों पर अपनी टिप्पणी की।

शैक्षणिक सत्र के दूसरे दिन के दूसरे प्रभाग में दोनों विशेष व्याख्यान आयोजित था जहाँ आदिवासी लोककला अकादमी, भोपाल के अध्यक्ष डा० कपिल तिवारी एवं संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली के उपसचिव सुश्री सजीथा मडथिल ने लोकनाट्य एवं लोककला के विविध पक्षों पर अपने व्याख्यान दिये। सत्राध्यक्ष डा० कुँवरजी अग्रवाल थे।

डा० कपिल तिवारी "लोकसंस्कृति-लोककला-लोककथा एवं लोकनाट्य" पर अपना भाषण प्रस्तुत किया। पहले डा० तिवारी ने अपनी परंपरा के आधारभूत कुछ बिन्दुओं पर विचार किया, जैसे लोक क्या है? शास्त्र क्या है? इसकी सटीक संज्ञा क्या होगी? इसका साफ साफ विभाजन होना संभव है कि नहीं और यदि संभव है तो उस पर आने वाली आपत्तियाँ क्या हो सकती हैं - आदि बिन्दुओं पर अपने विचार रखे।

अपने भाषण में उदाहरण के तौर पर डा० तिवारी ने असम के बिहु गान एवं उत्सव पर चर्चा की। बाद में उन्होंने गुजरात की गरवा एवं डांडिया पर भी प्रकाश डालते हुए कहा कि यह लोकनृत्य हल्लीसक सम्बद्ध एवं गोवर्धन पूजा तथा गोपाल संस्कृति से जुड़ा हुआ है। भिन्न-भिन्न क्षेत्र में इसके नाम भिन्न-भिन्न हैं। बाद में उन्होंने इस नृत्यविधा में नर्तक की वेशभूषा, नर्तन शैली आदि पर

भी चर्चा की। तत्पश्चात् विद्वान् वक्ता ने लोककथा/आख्यान/कथानक पर भी चर्चा किये जिसकी शुरुआत उपनिषदों से ही होती है। यह वाचिक परंपरा को अनमोल जनसंपदा कहा जा सकता है।

दूसरे विशेष व्याख्यान सुश्री सजीथा मडथिल ने प्रस्तुत की। उन्होंने केरल के लोक जीवन में प्रचलित एवं इस आल्हा एवं बिदेसिया के समानान्तर कुछ लोककला प्रारूप के बारे में बताया जो आज तक केरल में जीवित है। केरल में सितम्बर महीने में दस दिन तक चलने वाले पुरम् उत्सव में इस लोक संगीत एवं नाट्यविधा का प्रयोग धार्मिक अनुष्ठान के अंग मानकर आज भी होता है। यह केरल लोक संस्कृति का एक जीवित आयाम है। वस्तुतः उत्सवकालीन अनुष्ठान के अंगरूप में ही इसका अभिनय होता है। विदुषी मडथिल ने नर्तकों की वेशभूषा, नृत्य के साथ प्रयुक्त वाद्ययन्त्रों के बारे में विशेष जानकारी दी।

उनके कथनानुसार केरल की लोक संस्कृति में बिदेसिया के समानान्तर ऐसे अनेक कलारूप हैं लेकिन वह आज तक केरल भूखण्ड के अन्दर ही सीमित रह गया। भारत की दूसरी नृत्यविधा कथक या भरतनाट्यम के तरह सम्पूर्ण भारत में उसे प्रसार नहीं मिला। इसका कारण बतलाते हुए सुश्री मडथिल ने बताया कि सम्भवतः दक्षिण भारत की कठिन भाषाशैली एवं अपनी कलारूप का पूर्णतया नाट्यरूपता न होने के कारण ही इसे छोटे से दायरे में ही सीमित रहना पड़ा।

सायंकालीन प्रस्तुति सत्र में कन्नौज से आये संग्राम सिंह एवं उनके साथी आल्हा का गायन प्रस्तुत किया। बाद में कुतुबपुर, सारन स्थित भिखारी ठाकुर आश्रम के कलाकारों ने "बेटी बेचवा" का मंचन किया।

संगोष्ठी के तीसरे दिन प्रातःकालीन सत्र बिदापत नाच पर केन्द्रित था जहाँ कुशल वक्ता डा० प्रवीण भारद्वाज अपना व्याख्यान दिया। सत्राध्यक्ष के पद पर डा० ओम प्रकाश भारती आसीन थे। बिदापत एक संगीतात्मक लोकनृत्य है जो मिथिला, उत्तरी बिहार तथा नेपाल के दक्षिण-पूर्व भाग में प्रचलित है। यह नृत्यविधा अंकियानाट, कीर्तनिया एवं जात्रा से काफी कुछ मिलती-जुलती है। अपने वर्तमान रूप में यह १४वीं सदी के वैष्णव कवि विद्यापति के साथ अस्तित्व में आया और उन्हीं के नाम पर इसे बिदापत के रूप में जाना गया।

बिदापत नाच के उत्स खोजते हुए विद्वान् वक्ता कौटिल्य अर्थशास्त्र में उल्लिखित रङ्गोपजीवि, नट आदि तक पहुँचे। इसके बाद मान्यदेव के भरतभाष्य एवं पं० ज्योतिरीश्वर ठाकुर के वर्ण रत्नाकर आदि प्रमुख ग्रन्थों पर चर्चा की जहाँ लोकनाट्य विधा पर विशद चर्चा हुई है। पं० ज्योतिरीश्वर को मैथिल का प्रथम लेखक माना गया। वर्णरत्नाकर में बिदापत के और कुछ प्रचलित नाम मिलते हैं। डा० भारद्वाज के अनुसार इस लोकनाट्य का जन्म बंगाल में हुआ था। बिदापत नाम का याथार्थ्य बताते हुए उन्होंने कहा कि लोक में वैष्णव आराधन के प्रचार-प्रसार के लिये विद्यापति राधा-कृष्ण लीलाविषयक पद रचना की, उन पदसमूहों को कथानक के रूप में जोड़कर बिदापत

नाच रूप धारण किया। प्रख्यात साहित्यकार जगदीश माथुर भी बिदापत को विद्यापति से सम्बद्ध ही मानते हैं। बिदापत का सम्बन्ध रासक नृत्य के साथ है, रासक द्विविध होता है -नृत्य रासक एवं नाट्य रासक। इसका मूलरस शृंगार है परन्तु यहाँ हास्य रस का भी बहुत प्रयोग हुआ है। बिदापत एक गतिविधि-प्रधान नाट्यशैली है। इसमें एक मूल गायक के साथ विकटा, दो नट एवं तीन-चार सहायक नर्तक होते हैं। यहाँ प्रयुक्त गीत पद्धति, वाद्य प्रयोगशैली के ऊपर भी विद्वान् वक्ता ने प्रकाश डाला।

डा० ओम प्रकाश भारती के अध्यक्षीय उद्बोधन के साथ शैक्षणिक सत्र का समापन हुआ।

समापन सत्र में पहले अन्तर्-सांस्कृतिक अध्ययन केन्द्र की ओर से डा० अर्चना कुमार मुख्य अतिथि डा० कपिल तिवारी के समक्ष तीन दिनों तक चली संगोष्ठी में प्रस्तुत शोधपत्रों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। आदिवासी लोककला अकादमी के अध्यक्ष डा० कपिल तिवारी ने समापन सत्र में विशेष व्याख्यान प्रस्तुत करते हुए भारत के जनजातियों द्वारा आख्यान परंपरा की रक्षा का इतिहास एवं परंपरा के प्रवाह के रहस्य पर प्रकाश डाला। गोंड एवं भील जनजाति के लोगों ने जजमानी गायन के रूप में परंपराओं को जीवित रखा है। गोंडों की परंपरा में पांच गोंड राजाओं के आख्यान के द्वारा गोंडों ने अपनी रम्परा बचाए रखा है। उन्होंने बताया कि ये लोग कैसे रामकथा, महाभारत और श्रीमद्भागवत जैसे महान आख्यानों को कैसे ग्रहण करते हैं एवं बाद में जन समाज को कैसे वापस किया। इसी प्रकार आन्ध्र में 'हरिकथा' और छत्तीसगढ़ में 'पण्डवानी' आख्यानपरंपरा एवं कलाविधा की शुरूआत हुई। जनपदीय संस्कृति वस्तुतः इन आख्यानों से उनके वैश्विक रूप के शक्ति को व्यक्त करती है।

वरिष्ठ रंगकर्मी डा० कुँवर जी अग्रवाल ने कहा कि लोककलाओं को उनके अपने परिवेश में किया जाना चाहिए। लोकनाट्य अभिनेता केन्द्रित नाट्यरूप है जिसमें नाट्यालेख, प्रस्तुति और दर्शकों का एकीकरण होता है। इन अभिनेता-केन्द्रित कलारूपों को बचाने का उपाय हमें सोचना होगा। सत्र की अध्यक्षता प्रो० कमलशील ने किया। प्रो० कमलेशदत्त त्रिपाठी के धन्यवाद ज्ञापन से त्रिदिवसीय लोकाख्यान महोत्सव के शैक्षणिक सत्र का समापन हुआ।

सायंकालीन प्रयोग सत्र में सुलतानपुर से आये हरिवंशमणि तिवारी एवं उनके साथी आल्हा गायन की प्रस्तुति की एवं उसके बाद रेणुगाँव, अररिया के रामप्रसाद मण्डल एवं उनके सहयोगी कलाकारों ने बिदापत नाच का मंचन किया।

- प्रणति घोषाल